एवं प्रवर्तितं चक्रं
नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं
पार्थ स जीवति ॥१६॥

एवम् – इस प्रकार; प्रवर्तितम् – वेदों द्वारा स्थापित; चक्रम् – चक्र; न – नहीं; अनुवर्तयति – ग्रहण करता; इह – इस जीवन में; यः– जो; अघ-आयुः –

पापपूर्ण जीवन है जिसका; इन्द्रिय-आरामः – इन्द्रियासक्त; मोघम् – वृथा; पार्थ – हे पृथापुत्र (अर्जुन); सः – वह; जीवति – जीवित रहता है |

Text

हे प्रिय अर्जुन! जो मानव जीवन में इस प्रकार वेदों द्वारा स्थापित यज्ञ-चक्र का पालन नहीं करता वह निश्चय ही पापमय जीवन व्यतीत करता है। ऐसा व्यक्ति केवल इन्द्रियों की तुष्टि के लिए व्यर्थ ही जीवित रहता है।

गीता भूषण टीका

यह श्लोक यज्ञ न करने के दोष को दिखाता है | भगवान से सार वेद प्रकट हुए और वेदों से यज्ञ प्रकट हुए | यज्ञ से वर्षा होती है जिससे अन्न उत्पन्न होता है | अन्न से जीवों की उत्पत्ति होती है और जीवों के द्वारा फिर से नियत कर्म संपादित होते हैं |

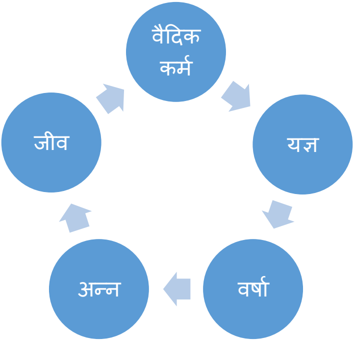

हे पार्थ ! जो व्यक्ति इस प्रकार के वर्णित चक्र का पालन नहीं करता है जो पूरे ब्रह्मांड का पालन करता है और जो प्रजापति भगवान विष्णु के द्वारा

प्रवर्तित अर्थात प्रारंभ किया गया है ऐसा व्यक्ति भगवान की अवहेलना करता है और अपने जीवन को व्यर्थ कर देता है | ऐसा व्यक्ति यज्ञ में अर्पित उच्छिष्ट को ग्रहण नहीं करता जो भगवान् के द्ववारा अनुमोदित है अपितु अपनी इन्द्रियों से विषय भोगों को भोगता है |

Purport

तात्पर्य : इस श्लोक में भगवान् ने “कठोर परिश्रम करो और इन्द्रियतृप्ति का आनन्द लो" इस सांसारिक विचारधारा का तिरस्कार किया है। अतः जो लोग इस संसार में भोग करना चाहते हैं उन्हें उपर्युक्त यज्ञ-चक्र का अनुसरण करना

परमावश्यक है। जो ऐसे विधिविधानों का पालन नहीं करता, अधिकाधिक तिरस्कृत होने के कारण उसका जीवन अत्यन्त संकटपूर्ण रहता है। प्रकृति के नियमानुसार यह मानव शरीर विशेष रूप से आत्म-साक्षात्कार के लिए मिला है जिसे कर्मयोग, ज्ञानयोग या भक्तियोग में से

किसी एक विधि से प्राप्त किया जा सकता है। इन योगियों के लिए यज्ञ सम्पन्न करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि ये पाप-पुण्य से परे होते हैं, किन्तु जो लोग इन्द्रियतृप्ति में जुटे हुए हैं उन्हें पूर्वोक्त यज्ञ-चक्र के द्वारा शुद्धिकरण की आवश्यकता रहती है। कर्म के अनेक भेद होते हैं। जो लोग

कृष्णभावनाभावित नहीं हैं वे निश्चय ही विषय-परायण होते हैं, अतः उन्हें पुण्य कर्म करने की आवश्यकता होती है। यज्ञ पद्धति इस प्रकार सुनियोजित है कि विषयोन्मुख लोग विषयों के फल में फँसे बिना अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकते हैं। संसार की सम्पन्नता हमारे प्रयासों पर नहीं, अपितु परमेश्वर

की पृष्ठभूमि-योजना पर निर्भर है, जिसे देवता सम्पादित करते हैं। अतः वेदों में वर्णित देवताओं को लक्षित करके यज्ञ किये जाते हैं। अप्रत्यक्ष रूप में यह कृष्णभावनामृत का ही अभ्यास रहता है क्योंकि जब कोई इन यज्ञों में दक्षता प्राप्त कर लेता है तो वह अवश्य ही कृष्णभावनाभावित हो जाता

है। किन्तु यदि ऐसे यज्ञ करने से कोई कृष्णभावनाभावित नहीं हो पाता तो इसे कोरी आचार-संहिता समझना चाहिए | अतः मनुष्यों को चाहिए की वे आचार संहिता तक ही अपनी प्रगति को सिमित न करें , अपितु उसे पार करके कृष्ण भावना मृत को प्राप्त हों|